



## International Journal of Sanskrit Research

अनन्ता

ISSN: 2394-7519

IJSR 2017; 3(6): 191-194

© 2017 IJSR

www.anantaajournal.com

Received: 22-09-2017

Accepted: 23-10-2017

अजय कुमार शर्मा

शोधच्छात्र

संस्कृत विभाग

जम्मू विश्वविद्यालय, जम्मू

### धर्मनीति मानव जीवन के अभ्युदय के लिए श्रेयस्कर एक शास्त्रीय विवेचना

अजय कुमार शर्मा

प्रस्तावना

मानव जीवन में वास्तविक लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए तथा जिस साधन से लक्ष्य प्राप्ति हो उस साधन रूप में जिन बातों की आवश्यकता पड़ती है उसे नीति कहा जाता है।

नीति तत्त्व की उत्पत्ति और उसका अर्थ

'णीञ् प्रापणे' इस प्राप्तिर्थाक णी (नी) धातु से करण तथा अधिकरण में 'क्तिन्' प्रत्यय के योग से नीति शब्द बनता है। धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष इन चार पुरुषार्थों को प्राप्त करने के उपायों का निर्देश जिसमें होता है उसे नीति कहते हैं।<sup>1</sup> मानव जीवन के लक्ष्य प्राप्ति में नीति ही उचित मार्ग प्रशस्त करती है।

दूसरे शब्दों में नीति का अर्थ है 'कर्मकर्मविवेक'। समाज में व्यक्ति, परिवार, जाति वर्ग राष्ट्र आदि भिन्न-भिन्न घटक होते हैं। इसमें व्यक्ति, समाज, संस्था आदि को कैसे रहना, व्यवहार कैसा करना आदि के सम्बन्ध में जिन नियमों का उल्लेख किया जाता है, उसे नीति शास्त्र कहा जाता है।

नीति तत्त्व का उल्लेख— शास्त्रों में नीति की व्यापकता का विशेष रूप से वर्णन किया गया है जैसे राज्य के सर्वविध अभ्युदय के लिए राजनीति, धार्मिक अभ्युदय के लिए धर्मनीति, जीवन में विविध क्षेत्रों में सफलता प्राप्ति के लिए व्यवहार नीति, समृद्धि के लिए अर्थनीति तथा दुष्ट शत्रुओं पर विजय प्राप्ति के लिए कूटनीति आदि का स्पष्ट वर्णन हमें शास्त्रों में मिलता है।

संसार में प्रत्येक प्राणी सुख चाहता है और सुख का आधार एकमात्र धर्म ही है। इसलिए सर्वोत्तम नीति धर्माचरण ही है। धर्म इस जीवन के लिए तो सुखकारक है ही प्रत्युत देहत्याग के बाद भी यह साथ रहने वाला परम मित्र है क्योंकि नीतिशास्त्र के महान विद्वान चाणक्य का पहला वचन ही यह है कि "सुखस्य मूलं धर्मः"

बृहदारण्यकोपनिषद् के मैत्रेयी याज्ञवल्क्य संवाद में कहा गया है— सबसे उत्तम प्रिय आत्मा है। आत्मा के लिये प्रिय धर्म है। इस तत्त्व को जिस प्रकार सुगम—सरल रूप से समझाने का प्रयास किया जाए वही नीति है।

तात्कालिक लाभ को प्राप्त करना ही नीति नहीं बल्कि जो वर्तमान और भविष्य में भी अनिष्ट को पास न आने दे नीति कहलाती है।

महर्षि वेदव्यास नीति को इस संसार का अमृत, उत्तम नेत्र तथा श्रेयप्राप्ति का सर्वोच्च साधन मानते हैं। महर्षि कहते हैं व्यवहार की वह रीति जिससे अपना हित हो और अन्य किसी को दुःख न पहुँचे वही नीति सर्वोच्च मानी जाती है तथा जिससे मनुष्य इस लौकिक जीवन में उन्नति और परलोक में भी परमात्मा की कृपा से निःश्रेयस को प्राप्त करते हैं अर्थात् सर्वश्रेष्ठ या सर्वोपरि कल्याण के भागी बनते हैं।

नीति शास्त्र के उद्भावक, प्रतिष्ठापक ओर प्रवर्तक— नीति शास्त्र के उद्भावक लोकपितामह ब्रह्मा, प्रतिष्ठापक भगवान् विष्णु और प्रवर्तक सदाशिव शंकर जी हैं।

ब्रह्माजी के नीतिवचन— ब्रह्मा जी कहते हैं तभी तक राग—द्वेषादि चोर पीछे लगे हुए हैं, तभी तक घर कारागार की तरह बांधे रहता है और तभी तक मोह की बेड़ियाँ पैरों को जकड़े रहती हैं जब तक जीव भगवान् की शरण में नहीं जाता, भगवान् का नहीं हो जाता।<sup>2</sup>

Correspondence

अजय कुमार शर्मा

शोधच्छात्र

संस्कृत विभाग

जम्मू विश्वविद्यालय, जम्मू

गृहस्थ के विषय में ब्रह्मा जी कहते हैं कि गृहस्थाश्रम सभी आश्रमों का उपकारक है इसलिये गृहस्थ को सत्संगति का आचरण, अपनी स्त्री से प्रेम, परनिन्दा से विमुख, पंचमहायज्ञ, देवता और अतिथि का सत्कार तथा शक्ति के अनुसार यज्ञ और दान करना चाहिए। इस नीति के अनुसार चलने वाले प्रत्येक व्यक्ति का जीवन सुखमय बना रहता है।

गोहिंसा पर ब्रह्मा जी का कथन है कि जो गोहत्या करता है, करवाता है और उसका मांस भक्षण करता है ऐसा महापापी गो के शरीर में जितने रोएँ होते हैं उतने वर्षों तक नरक में निवास करता है। ऐसे पापी नीति के विरुद्ध आचरण कर दुर्नीति को अपनाते हैं और दुर्गति को प्राप्त होते हैं।

गो की महान महिमा बताते हुये ब्रह्मा जी देवराज इन्द्र से कहते हैं कि जो गोसेवा का व्रत लेकर गौओं पर दया करता है; प्रतिदिन एक समय का भोजन गो माता को देता है, इस प्रकार दस वर्ष तक गोसेवा में तत्पर रहने वाला व्यक्ति अनन्त सुख भोगता है।<sup>13</sup>

**प्रतिष्ठापक भगवान् विष्णु द्वारा नीति की शिक्षा:**— लोक-परलोक की शिक्षा देने के लिये पृथ्वी पर जिनका अवतरण वारम्बार होता है वह प्रतिष्ठापक विष्णु जी ही हैं। भिन्न-भिन्न रूपों में जन्म लेकर तथा अपने आचरण के द्वारा संसार को रहनी-करनी, रीति-नीति के उन्होंने अनेक उपदेश दिए। इहलोक तथा परलोक के जितने शास्त्र हैं उनके मूल रूप नारायण ही माने जाते हैं।

राजधर्म के विषय में बताते हुए भगवान् कहते हैं कि राजा का कर्तव्य है प्रजापालन तथा वर्णाश्रमधर्म की व्यवस्था करना। अपने-अपने वर्णाश्रम धर्म का सभी लोग पालन करें इसकी यथोचित व्यवस्था राजा को करनी चाहिए।<sup>14</sup>

जो राजा प्रजा के सुख में सुखी, दुःख में दुःखी तथा पालन-पोषण करते हुए प्रजा को अपनी आत्मा समझता है, ऐसा धार्मिक राजा इस लोक में कीर्ति और परलोक में परम प्रतिष्ठा प्राप्त करता है।<sup>15</sup> जिस राजा के राज्य में न कोई चोर, न परस्त्रीगामी, दुष्ट, कटु वचन बोलने वाला, बल से धन को लूटने वाला, दण्ड और न ही कोई दण्डविधान का उल्लंघन करने वाला होता है, ऐसा राजा इन्द्र लोक को प्राप्त करता है।<sup>16</sup>

**प्रवर्तक भगवान् शंकर जी का नीतिविषयक ज्ञान:**— नीति शास्त्र के प्रवर्तक परमपिता भगवान् शंकर और पार्वती जगज्जननी जगदम्बा हैं। समस्त विद्याओं, कलाओं शास्त्रों तथा आगमों के मूल प्रवर्तक आशुतोष ही हैं।

कर्म साक्षी के विषय में प्रभु जी कहते हैं कि जीव जैसा कर्म करता है वैसा ही फल भोगता है और अपने किए हुए कर्मों का फल स्वयं भोगना पड़ता है। कोई दूसरा उसका अधिकारी नहीं।<sup>17</sup>

राजनीति का उपदेश करते हुए भगवान् शंकर जी कहते हैं कि — अशिष्ट पुरुषों को दण्ड देना और शिष्ट पुरुषों का पालन करना यही राजा का धर्म और नीति भी है।<sup>18</sup>

राजा के समुचित व्यवहार से ही प्रजा आनन्द का अनुभव करती है और राजा भी इस आनन्द का पूर्ण उपभोग करता है। क्योंकि धर्म के इस श्लोक के माध्यम से भी स्पष्ट हो जाता है कि धर्म का यदि हनन किया जाये तो नाश होता और धर्माचरण से ही धर्म व्यक्ति की सुरक्षा करता है। अतः प्रत्येक मनुष्य को, विशेषकर राजा को धर्म का हनन नहीं करना चाहिये।<sup>19</sup>

सृष्टि कर्ता ब्रह्मा ने प्रजा के धर्मपालन हेतु एक लाख अध्याय वाले नीतिशास्त्र की रचना की जिसमें चार पुरुषार्थों का निरूपण किया गया है।<sup>10</sup>

इस नीति शास्त्र को सर्वप्रथम शंकरजी ने ही ग्रहण किया।<sup>11</sup> परन्तु बहुत समय के पश्चात् प्रजाओं की शक्ति, सामर्थ्य और आयु को देखते हुए इस विशाल नीतिशास्त्र को शंकरजी ने लोककल्याण हेतु दस हजार अध्यायों में निरूपित किया।<sup>12</sup>

प्रभु ने अपने विशालाक्ष (विशाल आंखों वाले) के द्वारा इस संक्षिप्त नीतिशास्त्र को “वैशालाक्षमिति प्रोक्तम्”। अर्थात् वैशालाक्ष

नीतिशास्त्र नाम दिया। यद्यपि आज यह नीतिशास्त्र उपलब्ध नहीं होता तथापि विविध ग्रन्थों में उनके द्वारा प्रतिपादित जो कल्याणकारी बातें उपलब्ध होती हैं, उनसे भगवान् की कृपामयी बाणी का किंचित परिलक्षण होता है।

भगवान् की महिमा अनन्त है, सभी के परम पिता वही हैं उनकी महिमा का गान व्यक्ति के बस की बात नहीं क्योंकि उनकी महिमा का गान करने में देवता भी असमर्थ हैं, परन्तु फिर भी भक्तों ने यत-किंचित उनकी लीलाओं का चित्रण कर अपनी वाणी को पवित्र बनाया है, जैसे विवाह के समय भगवान् शिव से जो प्रश्न किए गए और उन्होंने जो उत्तर दिए उनका मनोहर चित्रण एक भक्त द्वारा यहां किया गया है। शिवजी से पूछा गया कि उनके पिता कौन हैं? शिवजी ने उत्तर दिया—ब्रह्मा। दूसरा प्रश्न—शिवजी से पूछा गया कि उनके बाबा कौन हैं? शिवजी ने कहा—विष्णु। तीसरा प्रश्न पूछा गया कि उनके परबाबा कौन हैं? उनका उत्तर था कि वह तो सबके हम ही हैं।

स्पष्ट है कि परमपिता सबके शिव ही हैं और उनसे बड़ा नीतिमान और नीतिज्ञ भी कोई नहीं तथा समस्त प्राणियों के अन्तिम विश्रामस्थान भगवान् शंकर ही हैं यथा “विश्रामस्थानमेकम्”।

**देवराज इन्द्र, बृहस्पति शुक्राचार्य शंकराचार्य, श्री राम, कृष्ण आदि के द्वारा नीति तत्त्व का उपदेश**

देवराज इन्द्र:— भगवान् शंकर से देवराज इन्द्र ने दस हजार अध्यायों वाले वैशालाक्ष नीतिशास्त्र को ग्रहण कर उसे पांच हजार अध्यायों में निरूपित किया जिसका नाम बाहुदन्तक नीति शास्त्र रखा गया।

आचार्य बृहस्पति:— प्रजापति ब्रह्मा द्वारा रचित नीति शास्त्र को शंकर जी ने संक्षेप पर वैशालाक्ष नाम दिया, इन्द्र ने संक्षेप कर बाहुदन्तक नाम दिया और पुनः इस बाहुदन्तक को और संक्षिप्त में आचार्य बृहस्पति ने लिखा, उन्होंने इसे तीन हजार अध्यायों में कर इसका बार्हस्पत्य नीतिशास्त्र नाम रखा। आचार्य बृहस्पति ने मनुष्यों की आयु, विद्या, बुद्धि और शक्ति का ह्रास होता देखकर ही अपनी बुद्धिमता से इसे तीन हजार अध्यायों में विभक्त किया था।<sup>13</sup> बृहस्पति का कथन है कि संसार अनित्य है इस नीति को ध्यान में रख जो मनुष्य दुर्जनों की संगति का परित्याग कर साधुजनों की सेवा में तत्पर रहता है। दिन-रात पुण्य संचय करते हुए संसार की अनित्यता को स्मरण रखता है वही नीतिमान है।<sup>14</sup>

**श्रीराम जी द्वारा उपदिष्ट राजनीति:**— श्री राम के समान नीतिज्ञ राजा कोई नहीं हुआ, अपनी इस नीति के आधार पर ही उनका नाम मर्यादा पुरुषोत्तम भी है। श्री राम जी के विषय में शुक्राचार्य भी अपने नीतिसार में कहते हैं कि राम के सामन नीतिमान राजा न पृथ्वी पर हुआ है और न ही भविष्य में होना सम्भव है।<sup>15</sup>

राजा के विषय में श्री राम जी का कथन है कि राजा को मुखिया कहा गया है। जिसका अर्थ है मुख की तरह और मुख से पोषित होने वाले अंग-हाथ, पाँव, नाक, कान, आंख आदि हैं। मुख के द्वारा ही इनमें चेतना का संचार होता है परन्तु यदि मुख इनका पोषण न करे तो यह सब अचेतनता को प्राप्त हो जाते हैं इसी प्रकार राजा के भी सात अंग माने गये हैं — राजा, अमात्य, राष्ट्र दुर्ग, कोष, बल और सुहृत् (मित्रादि) ये राज्य का उपकार करने वाले सात अंग हैं। इन सात राज्याङ्गों के संचालन पालन से ही समस्त राजनीति गतार्थ होती है।<sup>16</sup> अतः जो राजा इन राज्याङ्गों का भलि-भांति पालन करता है वही राजा वास्तव में नीतिमान भी है और धार्मिक भी।

**श्री कृष्ण जी के नीतिवचन:**— भगवान् की वाणीरूप ये दिव्य नीतिवचनमृत नाना पुराणों, शास्त्रों तथा महाभारत आदि में भरी पड़ी है। भगवान् श्री कृष्ण सम्पूर्ण धर्म, ऐश्वर्य, यश, श्री, ज्ञान, वैराग्य, त्याग, प्रेम, दया, करुणा क्षमा शान्ति, सत्य, संतोष सरलता आदि के महान् सागर हैं। उनकी नीति का स्पष्ट दृष्टांत हमे

भगवद् गीता में भी उपलब्ध होता है जिन्होंने मोह में फंसे अर्जुन को अपने नीतिपरक वचनों से धर्म युद्ध के लिये प्रवृत्त किया था। कहा भी जाता है कि उनके अतिरिक्त दयालु दुसरा कौन है जिसकी शरण ग्रहण की जाय।<sup>17</sup> भगवद् गीता के दूसरे अध्याय में ही वर्णन मिलता है जब अर्जुन धर्म और नीति के विषय में प्रभु जी से प्रार्थना करते हैं कि कायरता रूप दोष से अपहृत हुए स्वभाव वाला धर्म के विषय में अनभिज्ञ अर्थात् मूढ़ मैं आपसे प्रार्थना करता हूँ, जो श्रेयस्यकर हो मेरे लिये वही मार्ग निश्चित करें आप प्रभु जी क्योंकि मैं आपकी शरण में हूँ और शरणागत शिष्य को शिक्षा दीजिए।<sup>18</sup>

अर्जुन की इस प्रार्थना को स्वीकार कर श्रीकृष्ण जी ने उसे सम्पूर्ण गीता के माध्यम से धर्मनीति सांख्य, भक्ति, मोक्षादि का उपदेश दिया जो अर्जुन के लिये कल्याण का मार्ग बना और प्रत्युत लोक कल्याण का भी माध्यम बना।

नीतिमान भक्त के विषय में भगवान् जी कहते हैं कि भक्त न केवल अपने को बल्कि सारे संसार को पवित्र कर देता है।<sup>19</sup>

हमारे नीतिशास्त्र का कहना है कि जो दूसरे की स्त्री को माता के समान, दूसरे के धन को मिट्टी के समान और सब प्राणियों को अपने समान देखता है, वास्तव में वही देखता है। इसके विपरीत देखने वालों को बिना पूँछ और सींग के साक्षात् पशु ही समझना चाहिए।<sup>20</sup>

शुद्ध आचरण, सद्मार्ग तथा श्रेष्ठ पुरुषों का संग ही व्यक्ति को एक नीतिवान और धर्मात्मा बनाता है, जिसके माध्यम से व्यक्ति इहलोक में सम्पूर्ण सुखों का उपभोग कर परलोक में भी प्रतिष्ठित स्थान को प्राप्त करता है।

धर्मनीति के चार पाद हैं— सत्य, दया, तप और पवित्रता। इनमें सत्य सर्वोपरि है। पृथ्वी में धारण करने की क्षमता सत्य से ही आती है, सत्य के कारण ही सूर्य तपता है, सत्य के बल पर ही वायु का संचरण होता है तथा सर्वस्व की प्रतिष्ठा सत्य में ही है।<sup>21</sup> कबीर दास जी का भी कहना है कि—सत्य के बराबर कोई तप नहीं झूठ के बराबर कोई पाप नहीं, जिसके हृदय में सत्य का वास है वहाँ भगवान् निवास है।<sup>22</sup>

अतः शास्त्रों का मूल आधार धर्म ही है इस बात को ध्यान में रखते हुए एवं सम्पूर्ण विवेचन से यही स्पष्ट होता है कि व्यक्ति को लक्ष्य प्राप्ति में धर्माचरण से बढ़कर कोई मार्ग नहीं कोई नीति नहीं। धर्म से विरुद्ध आचरण करने वाले प्रत्येक प्राणी को इस लोक में और परलोक में भी दुःख भोगना पड़ता है और वह तब तक इस संसार चक्र में पड़ा रहता है जब तक उसे अपने वास्तविक रूप की प्रतीति नहीं होती, जिस प्रकार एक शेर का बच्चा भेड़ों के झुंड में आकर अपने वास्तविक रूप को भूलकर अपने आप को भेड़ ही समझता है परन्तु जब उसे अपने वास्तविक रूप का ज्ञान होता है तो वह अपने उन कर्मों को अपनाता है जो उसके वास्तविक कर्म हैं यही स्थिति मनुष्य की है, जब तक व्यक्ति को अपने वास्तविक रूप का ज्ञान नहीं होता तब तक वह इस आवागमन के चक्र में पड़ा रहता है उसे इस स्थिति से उभरने के लिए “पुनरपि जननं पुनरपि मरणं पुनरपि जननी जठरे शयनम्” श्लोक ही प्रेरणा देता है कि वह अपने वास्तविक रूप को पहचान कर धर्म का आचरण करे और जठरानि के बन्धन से सदा के लिये मुक्त हो जाए। धर्म नीति उसी प्रकार प्राणिमात्र के अभ्युदय के लिये आवश्यक है जिस प्रकार एक विद्यार्थी अपने लक्ष्य की प्राप्ति के लिए भिन्न-भिन्न परीक्षाओं के माध्यम से भिन्न-भिन्न क्षेत्रों में सफल होने की अभिलाषा करता है अर्थात् उसकी सफलता के लिये गुरु उसके लिए जीवन सेतु का कार्य करता है यदि कोई शुद्ध आचरण युक्त नीति को अपनाता है तो उसके पीछे धर्म है जैसे यहां धुआं है तो विदित है कि वहां अग्नि भी है। मात्र धुँए को देखकर ही अग्नि का अनुमान लगाया जा सकता है। वास्तव में धर्म नीति का पति है, उससे विरहित होकर नीति विधवा है। बिना धर्मरूप पति के विधवा नीति पुत्रोत्पादन नहीं कर सकती। उसमें फलोत्पादन की क्षमता नहीं रहती। बैधव्य में केवल बिलबिलाती है। असफल होकर विलाप

करती है। धर्म विरुद्ध नीति कही तत्काल अभ्युदय का साधन प्रतीत होती हुई भी परिणाम में अहितकारिणी ही सिद्ध होती है। दुष्परिणाम देने वाले साधन को नीति नहीं कहा जा सकता। जो परिणाम में दुष्कर हो वह सच्चा अभ्युदय नहीं, केवल अभ्युदाभास है, उसका साधन भी नीति नहीं हो सकता केवल नीत्याभास ही है, जैसे विष से मिला हुआ मधुर पकवान् सेवन में तत्कालिक आनन्द देने वाला होने पर भी मृत्यु का कारण होता है, वैसे ही धर्मविरुद्ध नीति आरम्भ में भले ही चमत्कारिक सफलता दिखलाये पर अन्त में वह पतन की ओर ले ही जाती है। समस्त महाभारत इसका ज्वलन्त उदाहरण है। धर्मविरुद्ध कूटनीति का उपयोग करके दुर्योधन को चौदह वर्ष के लिए अतुल साम्राज्य का उपभोग मिल गया परन्तु अन्त में पूर्ण पतन ही हुआ। धर्मनीति का अनुगामी बनकर युधिष्ठिर को चौदह वर्ष वनों में भटकना पड़ा परन्तु अन्त में साम्राज्य सिंहासन प्राप्त हुआ। इतिहास पुराणों में यही दिखलाया गया है कि धर्म से बढ़कर कोई मार्ग नहीं और जिस धर्म के संस्थापक स्वयं श्री भगवान् जी हों उसे भला कौन समाप्त कर सकता है। इसलिये प्रत्येक प्राणी—मात्र के लिये परम औषधि है यह धर्म, यदि व्यक्ति इसका सेवन करता है तो उसकी आत्मा किसी भी रोग या विकार से लिप्त न होकर शुद्ध निर्मल और कल्याणरूपी मार्ग को प्राप्त करती है, और यदि इस धर्मरूपी अर्थात् कल्याण रूपी औषधि को कोई कहे कि मैं इसका अस्तित्व ही समाप्त कर दूंगा तो इसके अनेक उदाहरण शास्त्रों में हमें मिलते हैं जैसे कुम्भकरण, रावणादि अनेक दुष्ट, परन्तु जिस धर्म की रक्षा एवं पुनर्स्थापना के लिये स्वयं भगवान् जी ने अनेक वार इस धरातल पर जन्म लिया हो उस सनातन धर्म के अस्तित्व के नाश के लिए कोई सोच भी कैसे सकता है। अनेक उक्तियाँ इस धर्म का प्रमाण हमें आज भी देती हैं जैसे सनातन धर्म के विषय में 1) “आश्रमाद् आश्रमं गच्छेद् एष धर्मः सनातनः” 2) “सुखस्य मूलं धर्मः” 3) यतोऽभ्युदयनिःश्रेयससिद्धिः स धर्मः 4) “यदा—यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत” 5) “धर्मो हि विश्वस्य जगतः प्रतिष्ठा” अतः स्पष्ट है कि धर्म के रक्षक एवं संस्थापक भगवान् जी ही हैं। वे अविनाशी परब्रह्म हैं। सभी प्राणियों के सुहृद हैं और सभी के कल्याण में निरत रहते हैं। वे ही सुहृद सर्वभूतानाम्, सुहृदं सर्वदेहिनाम्, सर्वभूतहिते रताः सब वही हैं। अन्त में इस अविनाशी धर्मनीति के विषय में यही कहना चाहता हूँ कि इस मायारूपी संसार चक्र से उभरने के लिये धर्मनीति का अनुसरण परमाश्यक है और यही एक परमतत्त्व है जो व्यक्ति के वास्तविक लक्ष्य को प्राप्त कराने में साधनरूप मोक्षसेतु का कार्य भी करता है क्योंकि धन भूमि पर रह जाएगा, गाय—भैंस, पशु खूँटे पर बंधे रह जाते हैं, प्रिय स्त्री घर के दरवाजे तक साथ देती है, भाई—बन्धु एवं सभी प्रियजन श्मशान तक साथ देते हैं, शरीर केवल चिता तक साथ देता है — किन्तु व्यक्ति का धर्म (नीतिपालन) परलोक की अखण्ड यात्रा में साथ देता है और साथ रहता है।<sup>23</sup> अतः सन्मार्ग पर चलना, भगवान् की स्मृति सतत् बनाए रखना ही धर्मनीति है, क्योंकि “यतो धर्मस्ततो जयः”।

### संदर्भ

1. नीयन्ते प्राप्यन्ते लभ्यन्ते अवगम्यन्ते धर्मार्थकाममोक्षोपाया अनया अस्यां वा इति नीतिः । (गी० प्रै० नी० अं० पृ० 199)
2. तावद् रागादयः स्तेनास्तावत् कारागृहं गृहम् । तावन्नोहोऽडधिननिगडो यावत् कृष्ण न ते जनाः ॥ (श्रीमद् भा० 10—14—36)
3. यदेक भक्तमश्नीयाद् दद्यादेकं गवां च यत् । दशवर्षाण्यनन्तानि गोव्रती गोऽनुकम्पकः ॥ (महा० भा० अनु० — 73/31)
4. प्रजापरिपालनम् वर्णाश्रमाणां स्वे स्वे धर्मे व्यवस्थापनम् । (वि० ध० शा० अ०—3)
5. प्रजासुखे सुखी राजा तद्दुःखे यश्च दुःखितः ॥

- स कीर्ति युक्तो लोकेऽस्मिन् प्रेत्य स्वर्गं महीयते ॥ (नी० अं० गी० प्रै० पृ०-20)
6. यस्य चौरः पुरे नास्ति नान्यस्त्रीगो न दुष्टवाक् ।  
न साहसिकदण्डघ्नौ स राजा शक्रलोकभाक् ॥ (वही पृ०-20)
7. यादृशं कुरुते कर्म तादृशं फलमश्नुते ।  
स्वकृतस्य फलं भुक्ते नान्यस्तद्भोक्तुमर्हति ॥ (महा० अनु० अ० 145)
8. अशिष्टशासनं धर्मः शिष्टानां परिपालनम् । (वही - 145)
9. धर्म एव हतो हन्ति धर्मो रक्षति रक्षितः ।  
तस्माद् धर्मो न हन्तव्यः पार्थिवेन विशेषतः ॥ (वही - 145)
10. धर्मार्थकाममोक्षाश्च सकला ह्यत्र शब्दिताः (महा० शांति० 59/79)
11. ततस्तान् भगवान् नीतिं पूर्वं जग्राह शंकरः । (वही - 59-80)
12. प्रजानामायुषो ह्यत्रासं विज्ञाय भगवान्निष्ठवः  
संचिक्षेप ततः शास्त्रं महास्त्रं ब्रह्मणा कृतम् ॥ (वही 59-81)
13. अध्यायानां सहस्रैस्तु त्रिभिरेव बृहस्पतिः ।  
संचिक्षेपेश्वरो बुद्ध्या बार्हस्पत्यं तदुच्यते ॥ (वही 59-84)
14. त्यज दुर्जनसंगर्गं भज साधुसमागमम् ।  
करु पुण्यमहोरात्रं स्मर नित्यमनित्यताम् ॥ (ग० पु० आचार० 108-26)
15. न रामसदृशो राजा पृथिव्यां नीतिमानभूत् । (शुक्र - नी० 5 - 57)
16. स्वाम्यमात्यश्च राष्ट्रं च दुर्गं कोषो बलं सुहृत् ।  
परस्परपकारीदं सप्ताङ्गं राज्यमुच्यते ॥ (नी० अं० गी० प्रै० पृ० 42)
17. कं वा दयालुं शरणं व्रजेम् । (श्रीमद् भा० 3-2-23)
18. कार्पण्यदोषोऽपहत स्वभावः, पृच्छामि त्वाम् धर्मं समूढं चेताः  
यच्छ्रेयः स्यान्निश्चितं ब्रूहि तन्मे, शिष्यस्तेऽहं शाधि मां  
त्वां प्रपन्नम् । (भ०गी० 2/5)
19. मदभक्तियुक्तो भुवनं पुनाति ॥ (श्री मद् भा० 11-14-24)
20. मातृवत् परदारेषु परद्रव्येषु लोष्टवत् ।  
आत्मवत् सर्वभूतेषु यः पश्यति स पश्यति ॥ (गी० प्रै० नी० अं० पृ०-235)
21. सत्येन धार्यते पृथ्वी सत्येन तपते रविः ।  
सत्येन वाति वायुश्च सर्वं सत्ये प्रतिष्ठितम् ॥ (चा० नी० 5/19)
22. सांच बराबर तप नहीं, झूठ बराबर पाप ।  
जाके हिरदै सांच है, ताके हिरदै आप ॥ (गी० प्रै० नी० अं० पृ०-18)
23. धनानि भूमौ पश्वश्च गोष्ठे,  
नारी गृहद्वारि जनाः श्मशाने ।  
देहश्चितायां परलोकमार्गे  
धर्मानुगो गच्छति जीवलोकः ॥ (वही पृ० 234)